ऊर्ध्वमुखी हो गई, बाँस पर ही उसका शरीर स्थिर हो गया, कषायों का मूलोच्छेद हुआ और उसे वहीं कैवल्य की प्राप्ति हो गई।

वीतराग दशा में वह बाँस से उतरा और उसी रंगमंच से उसने जन-कल्याण का उपदेश दिया। उस उपदेश से नट-कन्या तथा राजा के हृदय में भी वैराग्य-भाव जागृत हो गया। उन्हें भी कैवल्य की प्राप्ति हुई।

इस प्रकार नट-विद्या का रंगमंच आध्यात्मिक रंगमंच बन गया और तीनों ही संसार-बंधन से मुक्त हो गये।

—(क) आख्यानक मणिकोश
—(ख) उपदेशमाला

३६. इक्षुकार-कमलावती

राजा 'इक्षुकार' इक्षुकारनगर का स्वामी था। उसकी रानी का नाम 'कमलावती' था। महाराज के पुरोहित का नाम था 'भृगु' और उसकी पत्नी का नाम था 'यशा'। पुरोहित के दो पुत्र भी थे। पूर्वजन्म में ये छहों प्राणी प्रथम स्वर्ग के 'नलिनीगुल्म' विमान में थे। वहाँ से च्यवकर ये सभी यहाँ पैदा हुए थे।

महाराज इक्षुकार अपने पुरोहित भृगु को समय-समय पर विविध प्रकार का धन दान दिया करते थे। पुरोहित सर्वविधि सम्पन्न था। अपने दोनों पुत्रों के हृदय में वैराग्य जग जाने से माता-पिता भी संयमी बनने को तैयार हुए। पीछे वंश में कोई भी न होने से पुरोहित के घर का सारा धन गाड़ियों के द्वारा राज-भण्डार में जाने लगा। राजमहल के झरोखे में बैठी महारानी को यह सब देखकर बहुत आश्चर्य हुआ और महाराज से कहा—'पतिदेव! यह क्या? क्या कभी दिया हुआ दान भी वापस लिया जा सकता है? इस धन को लेना तो मानो वमन किये भोजन को पुनः खाना है। हृदयसम्राट्! पुरोहित और उसके पुत्रों ने दुःख, शोक-चिन्ता और अनर्थ का मूल समझकर जिस धन से अपना मुँह मोड़ लिया, आप उसी से प्रेम जोड़ रहे हैं। यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है? पुरोहित और उसका सारा परिवार नश्वर था तो हम क्या अनश्वर हैं? हमें क्या अमर रहना है?'

रानी के इस कथन से राजा प्रतिबुद्ध हुआ। राजा और रानी भी पुरोहित के साथ ही संयमी बन गये। मुनि-जीवन की उत्कृष्ट आराधना करके इक्षुकार राजा मोक्ष गया।

—उत्तराध्ययन, १४

३७. उग्रसेन

कंस' के पिता महाराज 'उग्रसेन' 'भोजकवृष्णि' राजा के पुत्र थे। जैसे 'अन्धकवृष्णि' और 'भोजकवृष्णि' दोनों भाई थे। 'अन्धकवृष्णि' के दस पुत्रों में सबसे बड़ा 'समुद्रविजय' तथा सबसे छोटे 'वसुदेव' थे। समुद्रविजय के पुत्र श्री 'नेमिनाथ' तथा वसुदेव के पुत्र श्री 'कृष्ण-बलभद्र' थे। 'भोजकवृष्णि' का पुत्र था 'उग्रसेन'। उनकी महारानी का नाम था 'धारणी'। ये मथुरा के शासक थे और समुद्रविजय शौरीपुर नगर के शासक थे।

एक बार महाराज उग्रसेन ने एक तपस्वी को अपने यहाँ व्रत खोलने की प्रार्थना की, पर समय पर उसे आहार देना भूल गये। वह तपस्वी मासव्रतधारी था, अर्थात् एक दिन ही आहार लेता था और फिर महीने-भर तक निराहार तपस्या करता था। यदि किसी कारणवश उस दिन उसे आहार नहीं मिलता तो भूखा ही अगले महीने का उपवास ग्रहण कर लेता। यों दो-तीन बार राजा प्रार्थना करता गया और समय पर भूलता गया।

अन्तिम बार जब अनुताप करता हुआ प्रार्थना करने राजा गया, तब तापस कुपित हो उठा। भूख से बेहाल बना निदान कर लिया कि यदि मेरे तप का कुछ फल है तो मैं तुम्हें दुःख देने वाला बनूँ।

तापस वहाँ से मृत्युगत होकर उग्रसेन की महारानी धारणी के गर्भ में आया। गर्भयोग से रानी के मन में अशुभ-अशुभ संकल्प उभरने लगे। यहाँ तक कि राजा के कलेजे का माँस खाने को भी रानी का दिल मचल उठा। मंत्री ने अपनी प्रतिभा-कौशल से जैसे-तैसे रानी की मनोभावना पूरी की। यथासमय पुत्र पैदा हुआ, पर महारानी ने सोचा—जो गर्भ में आते ही पिता के कलेजे का माँस खाने को ललचाया ऐसे कुलांगार से मेरा और इसके पिता का क्या भला होना है? यह तो अपने पिता को दुःख देने वाला ही बनेगा, इसलिए इसे अभी से दूर कर देना चाहिए, जिससे यह अपने पिता को कष्ट न दे सके। यों विचारकर उसे कांसी की पेटी में डालकर यमुना नदी में बहा दिया। पुत्र की मृत्यु हो गई यह समाचार सब जगह फैला दिया।

उधर यह पेटी तैरती हुई शौरीपुर नगर में 'सुभद्र' सेठ के हाथ लगी। खोलकर देखा तो नवजात शिशु मिला। अपना पुत्र मानकर अपनी पत्नी से उसका लालन-पालन करने को कहा। कांसी की पेटी में निकला था—इसलिए